International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(5): 142-144

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(5): 142-144
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-08-2024
Accepted: 12-09-2024

डॉ. पूजा तनेजा
Assistant Professor (VSY),
Department of Sanskrit,
Govt College Kalkawas, Dausa,
Rajasthan, India

Corresponding Author:
डॉ. पूजा तनेजा
Assistant Professor (VSY),
Department of Sanskrit,
Govt College Kalkawas, Dausa,
Rajasthan, India

भागवत पुराण में जीवन दर्शन

डॉ. पूजा तनेजा

प्रस्तावना

पुराणों का आर्य वाङ्मय में विशेष स्थान है। पुराणों को पञ्चम वेद कहा गया है।

इतिहास – पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते। [1]
ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्। [2]
इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः। [3]

अथर्ववेद में तो पुराणों की उत्पत्ति अन्य वेदों के साथ बताई गई है।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा दिविमिश्रितः।। [4]

आर्य संस्कृति के सर्वांगीण अध्ययन के लिये पुराणों का अत्यधिक महत्त्व है। पुराणों में तत्कालीन संस्कृति के प्रत्येक पहलू के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही वैदिक अध्ययन के लिये तथा उन्हें समझने के लिये पुराणों का अध्ययन अनिवार्य है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुपबृन्हणयेत्। [5]
वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने। वेदां प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।। [6]

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय तथा पुनः सृष्टि यही संसार चक्र है जिसमें पृथ्वी और प्राणी निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं इसी के अन्तर्गत हम श्रीमद् भागवत में निहित दार्शनिक ज्ञान का अध्ययन करेंगे।

श्रीमद्भागवत पुराण संस्कृत वाङ्मय का मुकुट मणि है जिसके श्रवण–मनन–चिन्तन एवं पाठ से चित्त में अलौकिक सुख व शान्ति प्राप्त प्राप्त होती है यह अत्यन्त गोपनीय व रहस्यमय पुराण है। जिसे भगवान् के रूपों का अनुभव कराने वाला समस्त वेदों का दार्शनिक सार कहा गया है। एक और भगवान् का नियमित नाम स्मरण सुख शान्ति व समृद्धि प्रदान करता है, वही दूसरी और हमें सांसारिक जनों को जीवन–जीने की कला भी सिखाता है।

श्रीमद्भागवत में दार्शनिक ज्ञान के अन्तर्गत सकाम कर्म, निष्काम कर्म, ज्ञान साधना, सिद्धि साधन, भक्ति अनुग्रह, मर्यादा, द्वैत–अद्वैत, द्वैताद्वैत, निर्गुण–सगुण, ताप–त्रय, व्यक्ताव्यक्त रहस्यों का समन्वय उपलब्ध होता है इसके योग के साथ सृष्टि क्रम का निरूपण करते हुए प्रकृति पुरुष विवेक से मोक्षपद प्राप्ति का विवेचन करता है इसके अन्तर्गत दर्शन व धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है दर्शन सिद्धान्तों का प्रतिपादक और नियामक रूपेण है तो धर्म व्यवहार–मार्गदर्शक है। भारतीय दर्शन आध्यात्मिकता से ओत प्रोत है। अतः दार्शनिकता, व्यापक एवं विशालधर्मिता के कारण सर्वश्रेष्ठ स्थान को प्राप्त है।

दर्शन जागतिक सत्य और जीवन के सार का अन्वेषण है। इसलिए जीवन का सृष्टि विषयक समस्त चिन्तन दर्शन कहा जा सकता है। दर्शन शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है – देखना, विचारना, श्रद्धा करना। आदिकाल से ही मानव ने अपने जीवन में दर्शन को प्रमुख स्थान दिया था। दर्शन शब्द का वाच्यार्थ है– दृश्यते अनेनति दर्शनम् अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाये। किसी भी वस्तु के तात्विक स्वरूप को जानने का साधन दर्शन है। दर्शन शब्द दृशिर प्रेक्षणे धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। दर्शन के अन्तर्गत ही मनुष्य में अपने आस–पास के पदार्थों को समझने के लिए जिज्ञासा की लहरे सदा दौड़ा करती है। यही नहीं उसके साथ इन वस्तुओं का क्या सम्बन्ध है उस सम्बन्ध का निरूपण कौन करता है इत्यादि कितनी ऐसी शंकायें हैं जिनसे मनुष्य को चिन्तन की प्रेरणा मिलती रहती है। मनुस्मृतिकार के अनुसार –

सम्यक् दर्शन सम्पन्नः कर्मभिर्निर्बद्धयते। दर्शनेन विहिनस्तु संसार प्रतिपद्यते।। [7]

अतः दर्शन शब्द तत्वज्ञान, आत्मज्ञान अथवा परमात्मा ज्ञान का वाचक है। भागवत पुराण में विवेचित दार्शनिक तत्वों ब्रह्म जीव व माया आदि का निरूपण इस प्रकार से भी किया जा सकता है –
भारतीया दार्शनिक सम्प्रदायों को आस्तिक सम्प्रदाय एवं नास्तिक सम्प्रदाय रूपेण द्विविध माना गया है। वेदों को प्रामाणिक रूप से स्वीकार करने वाला आस्तिक तथा वेदों को न स्वीकार करने वाला नास्तिक दर्शन माना जाता है। कहा भी गया है कि नास्तिकों वेदनिन्दक श्रीमद्भागवत पुराण किसी विशिष्ट दार्शनिक सम्प्रदाय का न तो अनुयायी है और न ही दर्शन का शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें तत्कालीन प्रचलित दार्शनिक विचारधाराओं का ही सुसमन्वित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जिसमें प्रत्येक जनसाधारण के उपास्य व आराध्य का स्वरूप समाविष्ट होता है। भागवत पुराण का प्रथम श्लोक ही उस परम तत्व का स्वरूप है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादिरतश्चार्थेष्वभिजः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदाय आदि कवये मुह्यन्ति यत्सुरयः। तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।।[8]

जिसमें इस जगत की सुष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं सही समस्त सद्रूप पदार्थों में अनुगत है और असत, पदार्थों से पृथक् है वह जड़ नहीं चेतन है, परतन्त्र न होकर स्वतन्त्र से वह स्वयं प्रकाश है जो ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ को भी अपने संकल्प से ज्ञान प्रदान करने वाला है जिस कारण यह त्रिगुणमय जाग्रत–स्वप्न–सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्यव्रत प्रतीत हो रही है उन स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा माया कार्य से पूर्णतः मुक्त रहने वाले परम सत्यस्वरूप परमात्मा को ही बहुधा ब्रह्म परमात्मा और भगवान कहते हैं यथा –

स एव विश्वं सृंजति स एवावति हन्ति च। अद्यापि ह्यनहंकारभाज्यत गुणकर्मभिः ।। [9]

सांख्यदर्शन मं वर्णित पुरुषवत् श्रीमद्भागवत पुराण का ब्रह्मतत्व केवल साक्षीमात्र नहीं है अपितु उसको जगत् सृष्टाधारियता तथा संहारक भी कहा गया है। अतः वही जगत् का निमित्त व उपादान कारण है।
जागतिक सृष्टि के पश्चात् सत् स्वरूप अपने द्वारा रचित संसार में ही अनुप्रविष्ट हो जाता है उसके अधिष्ठान से यह जगत् भी सत्यवत् स्वरूप को प्राप्त होता है जिस प्रकार सोया हुआ पुरुष स्वप्नावस्था को अविद्या के कारण मन ही मन स्वप्न जगत् की सृष्टि करके उसमें स्वयं उपस्थित होकर विविध रूपों में अनेकविध कर्म करता हुआ सा प्रतीत होता है। जबकि वास्तविक रूपेण व्यक्त–अव्यक्त रूप प्रकृति एवं जीवों से परे पुरुषोत्तम स्वरूप है। यथा –

त्वं माययाऽऽत्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चित।। [10]

पुनरपि अपने आश्रय में स्थित माया से इस संसार की रचना करते हैं तथा इसमें पुनः प्रविष्ट होकर अन्तर्यामी रूपेण विराजमान होते हैं। इसलिए विवेकी और शास्त्रज्ञ एकाग्रचित्त होकर आपके निर्गुण स्वरूप का ही साक्षात्कार करते है।
हे परमात्मन पहले भी यह जगत् आप में ही लीन था मध्य में भि यह आप में ही स्थित है और अन्त में भी पुनः आप में ही लीन हो जाएगा। आप ही इस जगत् के आदि मध्य और अन्त है जिस प्रकार घड़े का आदि, मध्य और अन्त है जिस प्रकार घड़े का आदि, मध्य और अन्त मिट्टी ही है वही अपने अभाव से माया मोहित जीवों के लिए धर्मादिरूप कल्याण का विधान करते हैं उक्तमपि –

त्वमाद्यः पुरुष साक्षादीश्वरः प्रकृते परः। मायां व्युदस्यचिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि।। [11]

शरीरधारियों को मुक्ति का अनुभव कराने वाली आत्मविद्या और बन्धन का अनुभव कराने वाली आत्मविद्या और बन्धन का अनुभव कराने वाली अविद्या दोनों ब्रह्म की ही अनादि शक्तियाँ है। उसकी माया से ही इनकी रचना हुई है।
जीव और ईश्वर बद्ध और मुक्त के भेद से भिन्न–भिन्न होने पर भी एक ही शरीर में नियन्ता और नियन्त्रित रूप से स्थित है। जैसे शरीर एक वृक्ष है जिसमें हृदय का घोंसला बनाकर जीव और ईश्वर नामक दो पक्षी रहते हैं। वे दोनों चेतन होने से समान व कभी न बिछुड़ने के कारण सखा है। इनके निवास का कारण लीला–मात्र ही है। इतनी समानता होने पर भी जीव तो शरीर रूपी वृक्ष के फल सुख–दुःख आदि भोगता है परन्तु ईश्वर उन्हें न भोगकर कर्मफल सुख दुखादि से असंग और उनका साक्षी मात्र रहता है। अभोक्ता होने पर भी वह ज्ञान, ऐश्वर्य आनन्द और सामर्थ्य आदि में भोक्ता जीव से बढ़कर है। यथा –

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयेतौ कृतनीडोच वृक्षे। एकस्तयोः खादतिपिप्पलान्न मन्ययोनिरन्नोऽपिबलेन भूयान।। आत्मानं मन्यं च स वेद विद्वाण पिप्पलादो न तुपिप्पलादः। योऽविद्ययायुक स तु नित्यलद्वोविद्यामयोयः सतुनियमुक्तः।। [12]

अभोक्ता ईश्वर तो अपने वास्तविक स्वरूप एवं जगत् को भलीभाँति जानता है परन्तु भोक्ता जीव अपने वास्तविक रूप व जगत् को नहीं जानता। इस कारण जीव को सुषुप्ति अवस्था में बताया गया है जो कि अपनी शक्ति से स्वयं माया को जाग्रत करता है। भागवत पुराण में कृष्ण को स्वयं भगवान् माना गया है –

एते चाशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। इन्द्रादि व्याकुल लोक मूडयन्ति युगे – युगे।। [13]

जब लोग दैत्यों के अत्याचारों से व्याकुल हो उठते हैं, तब–तब युग–युग में अनेक रूप धारण करके भगवान् उनकी रक्षा करते हैं। भगवान् ने सृष्टि के प्रारम्भ में लोकों के निर्माण की कामना से महदादि तत्वों स निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। उक्तमति –

एतन्नानावतराणां निधानं बीजमव्ययम्। यस्यांशाशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः।। [14]

जिस पुरुष रूप का ग्रहण भगवान् ने किया उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत – ये सोलह कलाएँ थी। भगवान् के उस विराट् स्वरूप के अङ्ग प्रत्यङ्ग में ही समस्त लोकों की कल्पना की गई है जो कि उनका विशुद्ध सत्वमय श्रेष्ठ स्वरूप है। भगवान् का यही पुरूष रूप जिसे नारायण कहते हैं अनेक अवतारों का अक्षय कोष है। हसी से समस्त अवतार प्रकट होते हैं तथा इसके सूक्ष्मतम अंश से देवता पशु–पक्षी और मनुष्यादि योनियों की सृष्टि होती है।
योगी लोग दिव्य दृष्टि से ही भगवान् के उस रूप का दर्शन करते हैं। यथा –

स वा अयं यत्पदमन्नं सूरयो जितेन्द्रिया निर्जित मातरिश्वनः। पश्यन्ति भक्त्युकलिता मलात्मना नन्वेष सत्वं परिमार्ष्टुमर्हति।। [15]

अर्थात् इस जगत् में जिसके स्वरूप का साक्षात्कार जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणों को वश में करके भक्ति से प्रफुल्लित निर्मल हृदय में

किया करते हैं, ये श्रीकृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म है। वास्तव में इन्हीं की भक्ति से अन्तः करण की पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादि के द्वारा नहीं। अतः जिनकी सुन्दर लीलाओं का गायन वेदों में और दूसरे गोपनीय शास्त्रों में व्यासादि रहस्यवादी ऋषियों ने किया है – जो एक अद्वितीय ईश्वर है और अपनी लीला से जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं, परन्तु उनमें आसक्त नहीं होते। जायते, अस्ति, वर्धते, परिणमते, अपक्षीयते और विनश्यति ये छः भाव विकार भी निवृत होने पर केवल ईश्वर ही शेष रहता है।

श्रीमद्भागवत का जो लोग इतनी श्रद्धा से पाठ करवाते हैं या यूँ कहे कि भागवत सप्ताह का जो आयोजन करवाते हैं उससे उनको किस प्रकार से इस संसार के अज्ञान से मुक्ति मिल सकती है क्योंकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इससे सरल कोई मुक्ति का उपाय वर्णित नहीं है क्योंकि इस भागवत् कथा का गुणगान श्रीहरि के मुख द्वारा ही किया गया था तो उससे अच्छा उपाय हो भी क्या सकता है।

अतः दार्शनिक तत्वों को जब हम बतलायेंगे तभी लोगों के मन में जो नास्तिकता भरी हुई है उन नास्तिक भावों को आस्तिक भावों में बदलने के लिए ये परम उपादेय ग्रन्थ है इसलिए इसी के दार्शनिक तत्वों का विवेचन किया जा रहा है ताकि लोगों में दार्शनिक सोच जो लुप्त प्रायः हो गयी है उसको पुनः जाग्रत करके उनके मन में इसी भावना को पुनः समावेशित किया जा सके।

अन्ततोगत्वा श्रीमद्भागवत पुराण में ब्रह्म को एक ज्ञानस्वरूप और निर्गुण बतलाया गया है, जिस प्रकार एक ही परब्रह्म महत् तत्व त्रिविध अहंकार, पञ्चमहाभूत और एकादश इन्द्रिय रूप बनकर इनके संयोग से जीव कहलाता है, उसी प्रकार जीव का शरीर रूप यह ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म है। यथोक्तम् –

> ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम्। अवभात्यर्थ रूपेण भ्रान्त्या शब्दादि धर्मिणा।। यथा महानह रूप स्त्रिवृत्यपच्चविधः स्वराट। एकादशविधस्तस्य वपुरण्ड जगद्यतः।। [16]

अतः श्रीमद्भागवत महापुराण में ब्रह्म को निरवयत, निराकार, अरूप, चिदात्मक, त्रिगुणी, माया से संसार की रचना करने वाला बतलाया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भागवत पुराण 1/4/20
2. छान्दोग्य उपनिषद् 7/1/2
3. न्यायदर्शन 4/1/62
4. अथर्ववेद 11/7/24
5. महाभारत आदिपर्व 1/261
6. नारद पुराण 2/24/17
7. मनुस्मृति 6/74
8. भागवत पुराण 1/1/1
9. भागवत पुराण 4/11/25
10. भागवत पुराण 8/6/11
11. भागवत पुराण 1/7/23
12. भागवत पुराण 11/11/6–7
13. भागवत पुराण 1/3/28
14. भागवत पुराण 1/3/5
15. भागवत पुराण 1/10/23
16. भागवत पुराण 3/32/28–29